CENTRE FOR AMBITION
(An Institute for Civil Services)

आधुनिक भारत

हमारे देश के इतिहास को सुविधा के लिए प्राचीन, मध्यकाल तथा आधुनिक काल में बाँटा जा सकता है। प्राचीन काल बहुत पहले से ही प्रारम्भ हुआ जब से मानव धरती पर रहने लगे। पिछले पाठ में तुमने मध्ययुगीन भारत के विषय में पढ़ा। मध्ययुग लगभग 8वीं सदी से आरम्भ होकर 18वीं सदी के आरम्भ तक माना जाता है। अब हम इतिहास के आधुनिककाल के विषय में पढ़ेंगे। पिछले दो युगों के दौरान आपने देखा होगा कि समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति एवं संस्कृति एक दूसरे से कितनी भिन्न रही है। इन विभिन्नताओं को तुम प्रगति, विकास, निरन्तरता और वृद्धि भी कह सकते हो जिसने हमारे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।

आपको स्मरण होगा कि जो लोग भारत के बाहर से आये जैसे तुर्क, अफगान और मुगलों ने भारत को ही अपना घर बना लिया परंतु ब्रिटिश उपनिवेशी शासक सदा इस धरती पर विदेशी ही बने रहे तथापि उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक बदलाव अपनी रूचि और हितों के अनुसार किए तथा इसकी प्रगति ने भारतीय संस्कृति के अनेक पक्षों पर अपनी गहरी छाप छोड़ी। यदि आप नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन को देखें तो आप भारतीय स्थापत्यकला पर ब्रिटिश प्रभाव को स्पष्ट देख सकते हैं। इसी प्रकार के नमूने कलकत्ता, मुम्बई आदि देश के अनेक शहरों के भवनों में भी देखे जा सकते हैं। अब ये सब हमारी सांस्कृतिक विरासत के अंग हो गये हैं। इन वास्तुकला के अवशेषों के अतिरिक्त यह औपनिवेशिक शासन यहाँ पर एक सुगठित सरकार की शासन प्रणाली, पश्चिमी विचारों, विज्ञान तथा दर्शनशास्त्रों पर आधारित शिक्षा प्रणाली को व्यवस्थित करके गया। आपके लिए यह जानना बहुत ही दिलचस्प होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिक भारत के निर्माण के लिए सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलन आरंभ किए गए थे।

भारतीय भाषाओं में लिखे आधुनिक साहित्य पर अंग्रेजी शिक्षा का गहरा प्रभाव पड़ा। इसके माध्यम से पश्चिम के संस्थानों एवं विचारों से भारत का घनिष्ठ सम्बन्ध जुड़ गया।

5.1 पश्चिम का उदय तथा इसका भारत पर प्रभाव

सन् 1450 ई. के बाद निम्नलिखित तीन प्रकार के विकास ने यूरोप का नक्शा बदल दिया–

(1) छपाई यंत्र का आविष्कार (2) पुर्नजागरण और सुधार आन्दोलन का प्रचार और प्रसार (3) व्यापार हेतु नए–नए मार्गों की खोज।

इसके बाद यूरोप ने विज्ञान, अन्वेषण और तोपखाने के क्षेत्र में उल्लेखनीय उन्नति की। जल्द ही उनकी स्थल सेना तथा जल सेना विश्व में सर्वश्रेष्ठ सेना हो गई। वैज्ञानिक शिक्षा चारों ओर फैलने लगी। तर्क और युद्ध ऐसे मापदण्ड बन गए जिन पर पुराने सिद्धांतों और ज्ञान को परखा जाने लगा।

इन यूरोप के देशों में पहले पुर्तगाली, डच फिर फ्रेंच अंततः ब्रिटिश भारत से व्यापार की दौड़ में एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे। भारत उस समय संसार में सबसे बड़ा निर्यातक देश था। ब्रिटिश ने भारत के व्यापार पर न केवल नियंत्रण कर लिया बल्कि देश को भी अपने वश में कर लिया और लगभग दो सौ वर्ष भारत उनके स्वामित्व में रहा। भारत के समस्त मानव संसाधनों का अविवेकपूर्ण शोषण किया गया और यहाँ का सारा धन शासक देश की खुशहाली के लिए वहाँ चला गया। अग्रेंजों ने भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाया। शक्तिशाली मुगल शासन के पतन के बाद अनेक छोटी–छोटी रियासतें उठ खड़ी हुई थीं। अंग्रेजो ने इस स्थिति का लाभ उठाया और एक शासक को दूसरे शासक से लड़ाते रहे या किसी राजा को सत्ता से हटाने के लिए होने वाली किसी अनधिकृत चेष्टा का समर्थन करते रहे। यद्यपि मैसूर के राजा टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों की इसी चाल का प्रयोग करने का प्रयास किया अर्थात् फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच की शत्रुता का लाभ उठाने का प्रयास किया लेकिन पश्चिम की श्रेष्ठ कूटनीति और अंग्रेजी तोपखाने की बराबरी टीपू सुल्तान नहीं कर सका।

भारत पर अंग्रेजी राज्य निम्नलिखित चरणों में विकसित होता चला गया। **पहला चरण** भारतीय व्यापार पर नियन्त्रण था। उन्होंने भारतीय वस्तुएँ बहुत कम दामों पर खरीदीं और पश्चिमी बाजारों में उनको बहुत ऊँचे दामों पर बेचा। इस व्यापार में भारतीय सेठों और साहूकारों ने उनकी सहायता की। किसानों को कुछ भी दिए बिना उन्होंने भरपूर लाभ कमाया। **दूसरे चरण** में अंग्रेजों ने उत्पादन की गतिविधियों को ऐसे तरीकों से जिससे उनकी निर्यात की गतिविधियों को सहारा मिले, अपने वश में कर लिया। उन्होंने व्यवस्थित रूप से भारतीय उद्योगों को नष्ट किया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भारत उनके माल का

संभावित खरीददार था। **तीसरा चरण** ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा अपने आर्थिक हितों के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सघन फैलाव और उसके द्वारा भारत के शोषण का है।

ब्रिटिश लोग भारत में व्यापार से लाभ कमाने आये थे। धीरे–धीरे उन लोगों ने देश की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति पर नियन्त्रण कर लिया। 1757 ई. के प्लासी युद्ध के बाद वे बंगाल में मालिक बन गए। उन्होंने अपने राजनैतिक नियन्त्रण के कारण बंगाल में अपना व्यापार बढ़ाया और विदेशी सामान का निर्यात किया। उन्होंने व्यापार में अपने भारतीय तथा विदेशी प्रद्विंद्वियों को निकाल दिया और अब कोई भी प्रतिस्पर्धा नहीं रही। उनका सूती कपास पर एकछत्र राज हो गया और वे जुलाहों को बहुत अधिक कीमत पर कपास देते थे। वे ब्रिटेन में जाने वाले भारतीय माल पर भारी टैक्स लगाते थे ताकि उनके अपने उद्योग सुरक्षित रहें।

यूराप में औद्योगिक क्रान्ति होने से भारतीय उद्योग को बहुत भारी नुकसान हुआ। 1813 ई. तक भारतीय दस्तकारों ने अपने घरेलू एवं विदेशी बाजार दोनों को ही खो दिया था। भारतीय माल, ब्रिटिश माल का जो मशीनों से बनाया जाता था, मुकाबला नहीं कर सकता था।

इधर दूसरी ओर अंग्रेज व्यापारीयों ने बहुत धन संग्रह किया और इस धन को उद्योग तथा व्यापार को स्थापित करने में खर्च किया। इसी बीच वहीं पर इंगलैंड के कुछ निर्माताओं ने व्यापार के मुकाबले वहीं पर सामान का उत्पादन करना लाभप्रद समझा। वे ज्यादा से ज्यादा कच्चा माल भारत से मंगवाते और उससे सामान बनाकर वापिस यहीं भेज देते थे। 1793 ई. से 1813 ई. के बीच इन ब्रिटिश निर्माताओं ने कम्पनी के विरूद्ध एक अभियान छेड़ दिया क्योंकि कम्पनी ने व्यापार पर एकाधिकार और अन्य सुविधाओं पर भी अपना हक जमा लिया था। अन्त में 1813 ई. में वे लोग ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारतीय व्यापार पर एकाधिकार समाप्त करने में सफल हो गए। इस प्रकार भारत औद्योगिक इंगलैंड की एक आर्थिक कॉलोनी मात्र बन कर रह गया।

परिमाणतः भारतीय हस्त शिल्प उद्योग समाप्त होने लगा क्योंकि ब्रिटिश मशीनों से बना सामान सस्ता होता था। ये सामान प्रायः करमुक्त या बहुत ही कम कर देकर भारत में प्रवेश कर जाते थे। भारतीयों को भी आधुनिक बनाना था जिससे वे पाश्चात्य सामान के शौकीन बन जायें और उन्हें खरीदने लगें। भारतीय औद्योगिक कम्पनियाँ भी अंग्रेजों के हाथों शोषण का शिकार होने लगीं जो भारतीय व्यापार के हितों के विषय में बिल्कुल ही चिन्ता नहीं करते थे। वे भारतीय व्यापार का संरक्षण भी नहीं करते थे और उन्होंने भारतीय व्यापार के क्षेत्र में नई तकनीक का प्रयोग भी प्रारंभ नहीं किया। भारतीय उद्योग हस्तशिल्प की भी हानि होने लगी जब विदेशी सामान करमुक्त भारत में आने लगा। बल्कि दूसरी ओर, भारतीय हस्तशिल्प सामानों पर जब वह ब्रिटेन पहुँचता तो बहुत भारी कर देना पड़ता। भारतीय चीनी मिलें चीनी की मूल कीमत से भी तीन गुणा अधिक कर देती थीं जब उनकी चीनी ब्रिटेन पहुँचती थी। अतः भारतीय व्यापार एक प्रकार से बिल्कुल ही समाप्त प्रायः हो गया।

भारत ब्रिटिश सामान का बहुत शानदार उपभोक्ता बन गया और 1813 ई. तक कच्चे माल का बड़ी मात्रा में निर्यात करने वाला बन गया। क्योंकि इंग्लैण्ड भारत का व्यापारिक लाभ के लिए शोषण कर रहा था यादि कच्चा सामान इंग्लैंड भेजना और बना हुआ सामान वापिस भारत में बेचना, इसलिए उन्होंने पानी के जहाज और रेलवे भारत में चलानी शुरू की। रेलवे ने ब्रिटिश के लिए बहुत बड़ा बाजार खोल दिया और भारतीय कच्चे माल को विदेश भेजने की भी सुविधा प्रदान की।

क्या आप जानते हैं कि 1853 ई. में पहली बार बम्बई से थाने तक चलने वाली रेलगाड़ी जनता के लिए खोली गई। रेलवे लाइन कच्चे माल के उत्पादक क्षेत्रों का निर्यात करने वाले बन्दरगाहों से जोड़ती थी। इस प्रकार ब्रिटिश माल से भारतीय बाजार भरने लगे। लेकिन रेलों ने देश में राष्ट्रीय जागृति के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। क्योंकि इससे लोगों के आपसी विचारों का सम्पर्क बढ़ा जिसका अंग्रेजों ने कभी अनुमान भी नहीं लगाया था। क्या यह व्यंग्यपूर्ण नहीं सिद्ध हुआ।

क्या आप जानते हैं कि 1853 ई. में डलहौजी ने प्रथम टेलीग्राफ लाइन कलकत्ता से आगरा के लिए खोली तथा भारत में डाकसेवा को शुरू किया।

18वीं शताब्दी में भारतः– अर्थव्यवस्था, समाज तथा संस्कृति

18वीं शताब्दी में भारत अनेक विषमताओं तथा परस्पर विरोधाभासों का ही चित्र था। आर्थिक रूप से केवल कृषि ही लोगों का मुख्य व्यवसाय थी क्योंकि उस समय शासक लगातार युद्ध करते रहते थे, उनके पास कृषि भूमि की दिशा को सुधारने का समय नहीं था।

विदेशी व्यापार मुगलों की छत्रछाया में विकसित हो रहा था। भारत फारसी खाड़ी राज्यों से मोती, रॉसिल्क, ऊन, खजूर, सूखे मेवे आदि मंगवा रहा था तथा अरब से कॉफी, सोना, ड्रग्स, शहद, चाय। चीन से चीनी मिट्टी से बने बर्तन तथा रेशम और तिब्बत, सिंगापुर, इण्डोनेशिया द्वीप, अफ्रीका तथा यूरोप से विलासी साजो–समान भी भारत में आयात होता था। भारत से

रौसिल्क, रेशमी कपड़ा, चीनी, मिर्च, नील, तथा अन्य वस्तुएँ निर्यात होती थीं। भारत का सूती कपड़ा पूरे संसार में बहुत प्रसिद्ध था।

व्यापार में आशाप्रद सन्तुलन होने पर भी भारत की आर्थिक अवस्था लगातार युद्ध के कारण बिगड़ती चली गई। इसके साथ ही देश के अन्दर सिख, जाट, मराठा आदि लोगों का विद्रोह तथा नादिरशाह (1739 ई.) अहमद शाह अब्दाली (1761 ई.) जैसे विदेशियों के आक्रमण जारी थे। अठारहवीं शताब्दी तक यूरोप के अन्य देश जैसे फ्रांस, इंग्लैण्ड, पुर्तगाल तथा स्पेन भी भारत के साथ व्यापार करना चाहते थे। वे देश में राजनैतिक तथा आर्थिक अस्थिरता की स्थिति पैदा करने में सहायता कर रहे थे और अन्त में उन्होंने इसकी अर्थ व्यवस्था को नष्ट कर दिया लेकिन उस समय तक, भारत की सुन्दर हस्तकला का यश सम्पूर्ण विश्व में फैल चुका था।

सामाजिक स्तर पर यहाँ लोगों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में कोई एकता नहीं दिखाई देती थी। चाहे हिन्दु हो या मुसलमान, उनमें क्षेत्र जाति, कबीले धर्म, और भाषा के आधार पर भेदभाव था। विवाह, भोजन सहभोज तथा पेशा (धन्धा) चुनने में जाति व नियमों का ही पालन करना आवश्यक था। यदि कोई इन नियमों का पालन नहीं करता था तो उसे जाति से बाहर निकाल देते थे।

विज्ञान के क्षेत्र में जहाँ कभी भारत बहुत ही उन्नत था परन्तु अ बवह गणित और विज्ञान को भूलते जा रहे थे। पश्चिम द्वारा उन्नत विज्ञान के क्षेत्र में की जा रही उन्नति से भारतीय प्रायः अनभिज्ञ थे।

प्राचीन समय में अध्यापकों का समाज में सम्मान होता था। शिक्षा परम्परा से परिपूर्ण होती थी। विद्यार्थियों को गणित के साथ लिखना एवं पढ़ना भी सिखाया जाता था। लड़कियाँ कम ही विद्यालय जाती थी। शिक्षा को राज्य के द्वारा संरक्षण नहीं मिलता था बल्कि इसको स्थानीय शासक, उच्च वर्ग के (अमीर) लोग तथा परोपकारी दानी ही संरक्षण देते थे।

हिन्दु–मुस्लिम सम्बन्ध

दोनों धर्मों के लोगों के बीच मित्रता के सम्बन्ध थे। सभी में धार्मिक सहिष्णुता थी। युद्ध राजनैतिक स्तर पर स्वार्थ वश किए जाते थे परन्तु धर्म के लिए नहीं? दोनों समुदायों के लोग एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेते थे। बहुत से हिन्दु मुसलमान पीरों (सन्त) में विश्वास रखते थे और मुसलमान भी हिन्दु देवों तथा सन्तों के प्रति आदर की भावना रखते थे। वास्तव में, उच्च वर्ग के हिन्दु और मुसलमानों में कई चीजें अपनी जाति के निम्न वर्ग की अपेक्षा परस्पर एक दूसरे धर्म के समान होती थीं। इसके अलावा मुसलमानों ने भारतीय शैली तथा संस्कृति इतनी अच्छी प्रकार से अपना ली थी कि इनको एक दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता था।

सामाजिक परिस्थितियाँ

19वीं शताब्दी तक आते–आते महिलाओं का अत्यधिक दमन होने लगा था। कन्या के जन्म लेने को दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता था। लड़कियों का विवाह बचपन में ही कर दिया जाता था। बहुपत्नीत्व की प्रथा जारी थी। महिलाओं का संपत्ति पर कोई अधिकार न था, न ही उन्हें तलाक का अधिकार था।

चिर वैधव्य सामाजिक आदेश था, विशेष रूप से ऊँची जातियों में ये विधवाएँ रंगीन कपड़े नहीं पहन सकती थीं, न वे विवाह में भाग ले सकती थीं क्योंकि उनकी वहाँ उपस्थिति अशुभ मानी जाती थी। चूंकि बाल–विवाह बहुत आम बात थी इसीलिए कई बार शिशु–कन्याएँ भी विधवा हो जाती थीं और उन्हें आजीवन वैधव्य का दर्द सहना पड़ता था।

सामान्यतः अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति नहीं थी। सामाजिक संरचना ऐसी थी कि नीची जाति के व्यक्ति के साथ खाना नहीं खाया जाता था। ऊँची जाति में दास प्रथा भारतीय समाज की एक और विशेषता थी। दासों को दहेज के रूप में भी दे दिया जाता था। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति भी वैसी ही थी। उन्हें बहुपत्नीत्व, पर्दा प्रथा, शिक्षा के अभाव और सम्पत्ति पर अधिकार न होने के कानूनों के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता था।

सामाजिक और धार्मिक सुधारक

ईसाई पुरोहित ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों के साथ उन ईसाइयों के धार्मिक कर्मकांडों के लिए भार आए थे। ये कर्मकांड थे– बपतिस्मा, विवाह, मुर्दों को दफनाना और चर्च में सेवा। जल्द ही उन्होंने कंपनी के गैर–ईसाई कर्मचारियों में भी अपने धर्म का प्रचार आरंभ कर दिया। फिर उन्होंने यूरोपीय लोगों के लिए विद्यालय भी खोले और जल्द ही कुछ भारतीय भी इन विद्यालयों में आने लगे। इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने ही ईसाई उपदेशों और साहित्य के प्रचार के लिए और लोगों को धर्मांतरित करने के लिए प्रिटिंग प्रेस और पत्रिकाओं की शुरूआत की।

ईसाई प्रचार के साथ–साथ उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा को आरंभ किया, जिसका भारत के समाज और इसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि अंग्रेजी पढ़ाई का आरंभ ब्रिटिश लोगों की राजनैतिक एवं प्रशासनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया था, पर इसने भारतीयों के लिए भी पश्चिम के द्वार खोल दिए। उन्होंने उदाहतावाद, तर्कवाद, लोकतंत्र, समता और स्वतंत्रता के पश्चिम विचारों को आत्मसात किया। अंग्रेजी शीघ्र ही पढ़े–लिखे भारतीयों की संपर्क भाषा बन गई और इसने उन्हें परस्पर जोड़ने की भूमिका निभाई।

राजा राममोहन राय

राज राममोहन राय भारत में आधुनिक युग के सूत्रधार माने जाते हैं। यूनानी और लैटिन सहित उन्होंने अनेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। हिंदु समाज में सुधार लाने और भारत के पुनर्जारण में इनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। चूंकि हिन्दु समाज में प्रचलित अनेक सामाजिक बुराइयाँ धार्मिक आस्थाओं के साथ परस्पर गुंथी हुई थीं इसलिए उन्होंने इन पर धर्मग्रंथों के संदर्भ के सहारे ही प्रहार किया। इन सामाजिक बुराइयों की सूची में सर्वोपरि थी सती प्रथा। राजा राममोहन राय ने इस प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई और अंततः इस पर रोक लगवा ही दी। उन्होंने ''ब्रह्म समाज'' की स्थापना की, जो उनकी तार्किकता और सामाजिक एकता के संदेश का वाहक बनी। उनके अनुयायी एक ब्रह्म या भगवान को मानते थे। और वे मूर्ति, बहु–देव पूजा तथा कर्मकांडों का विरोध करते थे। राजस्थान और बंगाल के विभिन्न भागों में स्वयं ही महिलाएँ अपने पति के मर जाने पर उनके साथ चिता में जल जाती थीं।

ऐसा समाज जहाँ समाज के सभी सदस्य पुरूष या स्त्री चाहे वे किसी भी सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि से हों, प्रसन्न रहें और उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। अभी हम सब को एकजुट होकर इस स्थिति को लाने के लिए बहुत काम करना होगा।

देवेन्द्र नाथ टैगोर (1817 ई. – 1907 ई.) राजाराम मोहन राय के बाद ब्रह्म समाज के नेता बने। उन्होंने ब्रह्म समाज में नई जान डाली और राजा राम मोहन राय के विचारों का प्रचार किया। केशब चन्द्र सेन (1838 ई. – 1884 ई.) ने टैगोर के बाद नेतृत्व संभाला। उस समय समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय एकता, भाई चारा, और सभी सामाजिक संगठनों तथा सामाजिक सम्बन्धों को लोकतान्त्रिक बनाने पर बल दिया जा रहा था। ब्रह्म समाज देश में राष्ट्रीय जागरूकता की भावना को व्यक्त करने वाला प्रथम सुसंगठित साध न बन गया।

प्रार्थना समाज और रानाडे

डॉ. आत्माराम पाण्डुरंग ने 1867 में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना की। उन्होंने समाज सुधारने हेतु अन्तर्जातीय भोजन एवं विवाह, विधवा पुनर्विवाह, महिलाओं तथा दलित वर्गों की स्थिति को सुधारने का बहुत प्रयत्न किया। रानाडे के अनुसार धर्म में कट्टरता सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में सुधार लाने की अनुमति नहीं दे सकती थी। वे एक प्रभु में विश्वास रखते थे। और मूर्त्ति पूजा एवं जाति प्रथा का खंडन करते थे।

रामकृष्ण परमहंस– स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज का पुनर्जागृत करने के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। वे गंगाधर चट्टोपाध्याय के शिष्य थे। बाद में रामकृष्ण परमहंस के नाम से जाने गए। विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं को अन्तिम आकार दिया। उन्होंने स्वतन्त्रता, मुक्तविचार तथा समानता पर बल दिया। 'सभी धर्म एक ही हैं' उनका नारा था उन्होंने वेदान्त दर्शन को आगे बढ़ाया क्योंकि वे इसे विचारों की सबसे उच्च बौद्धिक व्यवस्था समझते थे।

थिपोसोफिकल सोसाइटी तथा एनी बेसेन्ट

मैडम एच.पी ब्लेवेत्स्की 1837 ई. –91 ई. तथा कर्नल एच.एस. ओल्कॉट ने सुधार आन्दोलन के लिए थियोसोफिकल समाज की स्थापना की। एनी बेसेन्ट ने प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन तथा सिद्धान्त को पढ़ने के लिए प्रचार किया। उन्होंने शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्रीय हिन्दु विद्यालय खोला।

नारायण गुरू

नारायण गुरू दक्षिण भारत के एक महान सन्त थे। उनका जन्म सितम्बर 1854 ई. में केरल में हुआ। उनकी प्रारंम्भिक शिक्षा स्थानीय अध्यापक के निर्देशन में हुई। वे मलयालम, संस्कृत और तमिल भाषा में निपुण थे। उन्होंने अपनी किशोरावस्था में ही संन्यास मार्ग को अपनाने का विचार बना लिया था। अपने माता–पिता के देहान्त के बाद वे सच्चा ज्ञान पाने के लिए चल पड़े। उनको छत्तम्बी स्वामिंगल से संपर्क हुआ। वे दोनों मित्र बन गए। वे अपना समय सन्तों की सेवा करने, एकान्त में ध्यान लगाने और तीर्थ यात्राएँ करने में व्यतीत करते थे। स्वामिंगल और नारायण गुरू दोनों ने माना कि केरल की चहुँमुखी उन्नति, क्रमश नायर और इजावा समुदायों के सहयोग तथा उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करती है जिनमें वे दोनों क्रमशः पैदा हुए थे। ये दोनों समुदाय केरल को बर्बाद करने की धमकी दे रहे थे। उन दानों ने इन दोनों समुदायों को मिलाने का निश्चय किया।
नारायण गुरू धर्म सुधारक होने के साथ–साथ समाज सुधारक भी थे। वे तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने केरलवासियों के सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन को सुधारने के लिए प्रयत्न किया।

मुस्लिम सुधार आन्दोलन

सर सैयद अहमद खान मुसलमानों के बीच समाज सुधारक थे। वे मानते थे कि मुसलमान आधुनिक शिक्षा द्वारा ही उन्नति कर सकेंगे। सैयद अहमद खान धार्मिक असहिष्णुता, अज्ञान तथा अन्धविश्वासों के विरूद्ध थे। वे बहुपत्नीवाद, पर्दा प्रथा और सरल तलाक के तख्त विरूद्ध थे। उन्होंने अलीगढ़ आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन्होंने अलीगढ़ में मौहम्मडन एंग्लो–ओरियेन्टल कालेज की स्थापना की। यह महाविद्यालय के रूप में बनाया गया था। विज्ञान एवं संस्कृति के प्रचार करने का प्रमुख केन्द्र के रूप में बनाया गया था जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध हुआ।
अलीगढ़ आन्दोलन ने मुसलमानों की साहित्य जागृति में सहायता की। इससे उर्दू सामान्य भाषा बन गई। उर्दू में संग्रह के लिए एक मुस्लिम छापाखाना भी लगाया गया। दुर्भाग्यवश, कुछ वर्ष बाद सैयद अहमद खान ने भारत के मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित होने को मना कर दिया। वे समझते थे कि मुस्लिम वर्ग के लिए शिक्षा अधिक आवश्यक है बजाए राजनीति के। एक प्रकार से उन्होंने इस समय साम्प्रदायिकता और अलगाव के विचारों को प्रोत्साहित किया।

सामाजिक सुधार

क्या आप जानते हैं कि लगभग सभी धार्मिक सुधारकों ने सामाजिक सुधार आन्दोलन में भी योगदान किया क्योंकि भारतीय समाज में बीते हुए समय में जातिवाद, लिंग भेदभाव आदि कुरीतियों को धार्मिक स्वीकृति मिली हुई थी। सामाजिक सुधार आन्दोलन के दो मुख्य उद्देश्य थे– (क) महिला उद्धार तथा पुरूष के समान सम्मान। (ख) जातिवाद की कट्टरता को दूर करना, अस्पृश्यता को दूर करना तथा दलित वर्ग को ऊपर उठाना।

महिलाओं का उद्धार

आधुनिक भारत के सामाजिक जीवन में जो चमत्कारी परिवर्तन आया वह है नारी की स्थिति में सुधार। राज्यों तथा सुधारकों के प्रयत्नों से बाल विवाह का कानूनी तौर से निषेध कर दिया गया। महिलाओं ने स्वंय उत्साह से जीवन के सभी क्षेत्रों में शिक्षा के लिए बेहतर सुविधाएँ तथा सामाजिक उत्पीड़न के लिए विरोध के अनेक सम्भव मार्ग बनाए। इसी का प्रभाव है कि महिलाओं में राजनैतिक विवेक तथा चेतना बढ़ रही है। 1930 ई. में शारदा एक्ट के अंतर्गत विवाह के लिए कम से कम लड़कों की उम्र 18 वर्ष तथा लड़की की आयु 14 वर्ष नियत की गई।

क्या आप जानते हैं कि महर्षि कर्वे को महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में अनुपम कार्य करने के कारण भारत रत्न से पुरस्कृत किया गया था।

उन्होंने लड़कियों के लिए विद्यालय, विधवाओं तथा निराश्रितों के लिए कार्य की व्यवस्था की। शीघ्र ही इस आन्दोलन ने गति पकड़ी तथा लड़कियों एवं महिलाओं के लिए विद्यालय एवं महाविद्यालय खोले गये।

जाति प्रथा के विरूद्ध संघर्ष

रामकृष्ण मिशन तथा आर्यसमाज ने इस क्षेत्र में अतुलनीय कार्य किया। आर्य समाज ने विशेषरूप से शुद्धि आन्दोलन चलाया जिसके द्वारा जिन हिन्दुओं ने इस्लाम या ईसाई धर्म को अपना लिया था वे पुनः अपने धर्म में वापिस आ सकते थे।
पिछड़ी जातियों के नायक थे श्री बी. आर. अम्बेडकर तथा महात्मा गाँधी जिन्होने उनके लाभ के लिए अनेक विद्यालय एवं महाविद्यालय खोले। इसी के साथ–साथ महात्मा गाँधी ने अछुत लोगों को जिन्हें वे हरिजन कहते थे मन्दिर में भी जाने की अनुमति दिलावाई तथा अन्य लोगों के समान ही बर्ताव करने पर बल दिया। स्वतन्त्र भारत के संविधान में भी इस आन्दोलन को कानूनी स्वीकृति दी गई। अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया। लेकिन अभी तक हमें अपने इस उद्देश्य को पाने में सयम लगेगा जब समाज पूरी तरह से समानता और कानूनी सहमति पर आधारित होगा

स्वामी दयानंद

स्वामी दयानंद का सबसे बड़ा गुण था उनका संस्कृत भाषा पर अधिकार तथा वेदों का ज्ञान। उन्होंने अनुभव किया कि अन्धविश्वास और जो कुरीतियाँ हिन्दु समाज में विगत शताब्दियों से फैल गई हैं, ये सिर्फ वेदों के अज्ञान के कारण हैं।
1875 ई. में उन्होंने 'आर्य समाज' की स्थापना की। इस 'आर्य समाज' का मुख्य उद्देश्य था वेदों के सच्चे ज्ञान को प्रचारित करना और उन समस्त बुराइयों को दूर करना जो पूरे हिन्दू समाज में बाद में प्रवेश कर गई थीं। उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया। उन्होंने बहुदेवतावाद, अवतारवाद और कर्मकांड का विरोध किया। उनका नारा था' ''वेदों की ओर लौटो''
भारत के इतिहास में पहली बार उनकी देखरेख में वेदों का पुनः मुद्रण किया गया। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है ''सत्यार्थ प्रकाश'' (सत्य का प्रकाश)।
1883 ई. में उनका निधन हो गया। 1886 ई. में उनके अनुयायियों ने ''दयानन्द ऐंग्लों वैदिक'' स्कूल और कालेज की लाहौर (अब पाकिस्तान में) में स्थापना की। इस डी.ए.वी. (DAV) आंदोलन ने उनके कार्य को आगे बढ़ाया है और इस समय इस एक ही संगठन के अंतर्गत 750 से भी अधिक संस्थान हैं।
बी.आर. अम्बेडकर तथा स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त अन्य सुधारक राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राधाकांत देव, थियोसॉफिकल सोसाइटी और आर्य समाज ने जो कार्य किए उनके परिणामस्वरूप महिलाओं की स्थिति और शूद्रों की स्थिति के बारे में बहुत बड़ी संख्या में पूर्वी और उत्तरपूर्वी भारत के बहुत से लोग जागृत हुए और उपनिवेशी सरकार के सक्रिय सहयोग से अनेक सामाजिक बुराइयों पर प्रतिबंध लग गए।

ज्योतिराव गोविंदराव फुले (1827 ई.–90 ई.)

ज्योतिबा के नाम से अधिक लोकप्रिय ज्योतिराव का जन्म (1827 ई.) में पुणे के एक निम्नजाति 'माली' परिवार में हुआ था। ज्योतिबा का विचार है कि अनेक निचली जातियों और महिलाओं की स्थिति सुधारने का एकमात्र उपाय है 'शिक्षा'। इसलिए विशेष रूप से निचली जातियों के लिए उन्होंने एक विद्यालय खोला। 1873 ई. में उन्होंने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की।
उनका मुख्य उद्देश्य था तथाकथित अछूत और पिछड़े वर्गों के लिए सामाजिक न्याय दिलवाना। उन्हें कई सालों के बाद पहचान मिली और उन्हें पुणे की नगरपालिका का सदस्य चुना गया।

पंडिता रमा बाई (1858 ई. – 1922 ई.)

भारत में और विशेष रूप से महाराष्ट्र में महिला समाज सुधारकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम है ''पंडिता रमा बाई'' का। अपने माता पिता की मृत्यु के बाद वे अपने भाई के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमती रहीं और पुराणों पर भाषण देती रहीं। एक विदुषी और धार्मिक वक्ता के रूप में उनकी कीर्ति दूर–दूर तक फैल गई। यहाँ तक कि कलकत्ता के पंडितों ने भी उन्हें कलकत्तावासियों के समक्ष उपदेश देने के लिए आमंत्रित किया। सभी उनके ज्ञान और वक्तव्य से आश्चर्यचकित थे। अब लोगों ने उन्हें पंडिता कहना शुरू कर दिया। पंडिता की उपाधि विदुषी महिलाओं को दी जाती थी।
1882 ई. में रमा बाई पुणे लौट आईं। यह स्वाभाविक था कि वे प्रार्थना समाज की ओर सहज ही आकर्षित हो गईं जो महाराष्ट्र में ब्रह्म समाज के संदेश का प्रचार–प्रसार कर रही थी। अब उन्होंने महिलाओं की स्थिति सुधारने पर ध्यान केंद्रित किया। 1890 ई. में उन्होंने विधवाओं के लिए एक आश्रम खोला जिसका नाम था ''शारदा सदन''।
माधव गोविंद रानाडे, आर.जी. भण्डारकर, दादाभाई नौरोजी, बेहरामजी मालबारी आदि अन्य प्रसिद्ध व्यक्तित्व थे जिन्होंने पश्चिम भारत में समाज सुधार के कार्य में अपना योगदान किया।

प्रेम और आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा साहित्य का विकास

1798 ई. में लिथोग्राफी का आविष्कार हुआ। इसमें किसी भी लिपि, चित्र, आरेखण की अनेक प्रतियों के मुद्रण के लिए एक विशेष रूप से तैयार पत्थर की सतह का प्रयोग किया जाता था। लगभग सन् 1820 ई. के बाद से सैकड़ों पुस्तकें और पुस्तिकाएँ मुद्रित की गई और इससे भारत की बढ़ती साक्षर जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगी। पश्चिम द्वारा भारत को दिया गया यह सबसे बड़ा वरदान था। 19वीं. शताब्दी के अंत तक आते–आते जनमत को प्रभावित करने का प्रेस एक सशक्त साधन बन चुका था।
चूंकि नए छापेखानों का मूल्य अधिक नहीं था, इसलिए इनकी संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं के लेखक बड़ी संख्या में प्रोत्साहित हुए और उन्होंने विपुल साहित्य की रचना की।
इन लोगों ने न केवल मौलिक साहित्य–सृजन किया बल्कि प्राचीन भारतीय एवं पश्चिमी साहित्य का अनुवाद भी किया। इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक विरासत को और समृद्ध बनाया। इससे भारतीय चेतना में भी जागृति फैली।
लगभग प्रत्येक भाषा में साप्ताहिक एवं पाक्षिक पत्रिकाएँ और दैनिक समाचार पत्र निकलने आरंभ हुए। यद्यपि भारत में समाचार पत्र पढ़ने वाले लोगों की कुल संख्या यूरोपीय देशों में समाचार पत्र पढ़ने वाले लोगों की तुलना में बहुत कम थी, लेकिन फिर भी उपन्यासों, निबंधों और कविताओं के रूप में राष्ट्रीय साहित्य के एक नए संकलन ने राष्ट्रीयता के अभ्युदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंकिम चंद्र के ''आनंदमठ'', ''दीनबंधु मित्र के नीलदर्पण'', भारतेंदु हरिश्चंद्र के ''भारत दुर्दशा'', लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ की असमी भाषा की कृतियों ने तथा तमिल में सुब्रह्मण्यम् भारती की और उर्दू में अल्ताफ हुसैन की कृतियों ने भारतीयों के मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया।

समाचार–पत्रों की भूमिका

उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों में भारत में छापाखाना जनता के विचारों को सुगठित, प्रचारित, प्रसारित, प्रभावी और प्रखर करने का सशक्त माध्यम बन चुका था। अखबारों ने ब्रिटिश विरोधी विचारों को फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा उसने सरकार की नीतियों पर तथा सामाजिक और आर्थिक विषयों पर टिप्पणी कर जनता को सरकार के खिलाफ खड़ा कर दिया। छापाखानों ने अखिल–भारतीय चेतना को बढ़ावा दिया तथा भारतीयों को महत्त्वपूर्ण राजनीतिक शिक्षा प्रदान की।
कुछ महत्वपूर्ण अखबार–
बंगाल – दी हिन्दू पैट्रिऑट (अंग्रेजी)
दी अमृत बाजार पत्रिका (अंग्रेजी)
बॉम्बे – मराठा (अंग्रेजी), केसरी (मराठी)
मद्रास – दी हिन्दू (अंग्रेजी), स्वदेशमित्र (तमिल)
पंजाब – दी ट्रिब्यून (अंग्रेजी), कोहिनूर, अखबार आम (उर्दू)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का भारत

स्वतंत्र भारत को अपनी उपलब्धियों पर निश्चय ही गर्व हो सकता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि एक धर्म–निरपेक्ष और लोकतांत्रिक राष्ट्र के निर्माण की आधारशिला को स्थापित करना रहा है। आजादी के बाद से स्थापित शासन की संसदीय व्यवस्था बहुत स्थायी सिद्ध हुई और आज भारत विश्व का सबसे बड़ा संसदीय प्रजातंत्र है। भूतपूर्व रियासतों का भारतीय संघ में विलय दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। राज्यों का पनर्गठन सतत् प्रक्रिया का हिस्सा है तथा लोगों की जरूरतों और उनकी मांग पर नए राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों का उदय हो रहा है। सामाजिक न्याय के अनुरूप भारत की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए आर्थिक योजनाओं को भी लागू किया गया। भारत ने आर्थिक विकास विशेष तौर पर कृषि और कृषि संबंधी उद्योगों के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। इसमें उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र भी शामिल हैं जिसमें भारत अति विकसित राष्ट्रों की बराबरी बहुत तेजी से कर रहा है। दक्षिण–एशिया में भारत की राजनैतिक और आर्थिक रूप से मजबूत स्थिति के कारण अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में इसकी आवाज को सम्मान के साथ सुना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी स्वतंत्रता की माँग को व्यापक समर्थन मिल रहा है।

राष्ट्रीय आन्दोलन– प्रारम्भिक चरण (शुरूआत)

भारत के सभी कार्य क्षेत्रों में पिछड़ेपन का मुख्य कारण था ब्रिटिश साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद। भारतीय भी अब इस सच्चाई का अनुभव करने लगे थे। किसान और मजदूर भी अंग्रेजों के लालच एवं उदासीनता के सबसे ज्यादा शिकार थे। उद्योगपति भूमिका और पूंजीवादी भी अंग्रेजी राज्य से प्रसन्न नहीं थे। बुद्धजीवी वर्ग ने इस समय महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। वे भारत में सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अंग्रेजों के राज की सच्चाई को समझा। उनकी आशा थी कि अंग्रेज बहुत परोपकारी शासक सिद्ध होंगे, निष्फल सिद्ध हुई। अब वो देख सकते थे कि अंग्रेज लालची और स्वार्थी थे और अपने ब्रिटेन के हित ही उनके मन में सर्वोपरी रहते थे।

19वीं सदी तक सभी भारतीय एक हो गए और वे समझ गये कि उन सबका एक ही समान शत्रु है और वह है अंग्रेज जो अपने लाभ के लिए भारत को नष्ट करने पर तुले हुए थे। लेकिन अंग्रेजों ने देश में प्रशासनिक और आर्थिक एक रूपता लाने में सहायता की। उन्होंने संचार व्यवस्था को सुदृढ़ किया, रेलवे का निर्माण किया, डाक तार व्यवस्था की, सड़कें और मीटर तथा अन्य यातायात के साधनों का निर्माण करवाया जिससे लोगों में परस्पर एकता का विकास हुआ।

अंग्रेजो के साथ ही भारत में आए पश्चिमी विचारों तथा नई शिक्षा ने भारतीयों में नवचेतना को जागृत किया। प्रजातन्त्र विषयक आधुनिक विचार, मानवता और सम्प्रभुता आदि की अवधारणा भारतीयों को राष्ट्रीयता की ओर प्रेरित करने लगी। प्रेस और साहित्य ने भी राष्ट्रीय भावनाओं को प्रसारित करने में उतनी ही आवश्यक भूमिका का निर्वाह किया। बहुत से देशभक्त लेखकों ने अपने लेखों से जनता को प्रेरित किया। 19वीं शताब्दी में भारत की प्राचीन महत्ता का भी पुनः प्रचार हुआ। यह कार्य कुछ प्रबुद्ध अंग्रेजों द्वारा भी किया गया जिन्होंने भारत के प्राचीन ग्रन्थों का पढ़ा और उसकी गम्भीरता तथा महत्त्व को लोगों के सामने रखा। कुछ प्रसिद्ध शिक्षित भारतीयों ने भी देश में इस चेतना का प्रचार प्रसार करके इसके पुनरूद्धार में अपना योगदान किया। अंग्रेज शासकों द्वारा भारत में अपनी जाति के प्रति घमण्ड और भेदभाव की भावनाओं ने, इल्बर्ट बिल के विरूद्ध अंग्रेजों के आन्दोलन ने, लार्ड लिटन के भारत विरोधी कानूनों ने और जब अनेक भारतीय अकाल से भूखे मर रहे थे, ऐसे समय में शानोशौकत से ब्रिटिश राज दरबार के आयोजन ने भारतीयों के मनों में तीव्र आक्रोश भर दिया। 19वीं शताब्दी में देश में राष्ट्रीयता की भावनाओं के प्रसार के ये बड़े कारण बन कर उभरे। ए. ओ. ह्यूम द्वारा आरम्भ की गई इण्डियन नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व में इन सभी भावनाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। कांग्रेस का इतिहास भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास बन गया। इस अवधि में कांग्रेस राजनैतिक स्तर बहुत कुछ उपलब्धियाँ नहीं प्राप्त कर

पाई परन्तु इसकी स्थापना के बीस वर्षों में यह एक राजनैतिक जागरूकता और एकता की भावना को अवश्य जागृत कर पाई। यह काल राष्ट्रीय आन्दोलन में नरम दल का युग कहा जा सकता है।
अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' कूट नीति के पहले फल के रूप में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। अंग्रेज बड़े खुश थे कि वे 62 मिलियन मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग करने में समर्थ हो गए। इस प्रकार हमारे देश में साम्प्रादायिकता के दुष्ट राक्षस का जन्म हुआ।

होम रूल आन्दोलन

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। कांग्रेस ने अंग्रेजों की सहायता करने का निश्चय किया। विशेष रूप से नरम दल के लोगों द्वारा यह माना जाने लगा कि ब्रिटिश युद्ध के बाद भारत को स्वत्रन्त्र कर देंगे। लेकिन बहुत शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि यह आशा पूरी नहीं होगी क्योंकि यह युद्ध तो देशों को अपने कब्जे में रखने के लिए ही किया जा रहा है। परिणामतः सन् 1915 ई. – 1916 ई. में दो होम रूल लीगों की स्थापना हुई। एक का प्रारम्भ तिलक ने पूना में किया और दूसरी का मद्रास में एनी बेसेन्ट ने। इन दोनों दलों का उद्देश्य था स्वराज्य या अपना राज्य की प्राप्ति। इसी भारतीय राष्ट्रवादियों को एक निश्चित उद्देश्य मिल गया। आन्दोलन ने क्रांतिकारी या शस्त्रों के उपयोग का बहिष्कार किया। होम रूल लीग कांग्रेस के सहायक यूनिट की तरह कार्य करने लगीं।

1905 ई. – 1918 ई. की अवधि

1905 ई. से 1918 ई. तक का समय हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों का युग कहा जाता है। उग्रवादी नरमदल की आलोचना निम्नलिखित आधार पर करने लगे– भारत के राजनैतिक लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित न कर पाना, नरम और प्रभावहीन तरीके अपनाना, और आन्दोलन को जन आन्दोलन न बना पाना। उग्रवादी सीधी राजनैतिक कार्यवादी करने में और संवैधानिक सुधारों के स्थान पर स्वराज्य मांगने के पक्ष में थे। उग्रवादियों के दल का नेतृत्व लाल, बाल, पाल कर रहे थे अर्थात् लाला लाजपतराय, बालगंगाधर तिलक, विपिचन्द्र पाल। बंकिम चन्द्र, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानंद सरस्वती और अरविन्द घोष आदि ने अपने विचारों और प्रवचनों से इस उग्रदल के दृष्टिकोण को समर्थन दिया। कर्जन की भारत में दमनकारी नीतियाँ जिसका अन्त साम्प्रदायिक आधार पर बंगाल के विभाजन के रूप में सामने आया और जिनका आधार था 'फूट डालो और राज्य करो' प्रत्यक्ष आंदोलन के रूप में प्रकट हुईं। बंगाल विभाजन के विरोध में भी आन्दोलन हुआ। इस आंदोलन के साधन जो अपनाए गए वे थे विदेशी सामान का बहिष्कार और स्वदेशनिर्मित वस्तुओं का अपनाए गए वे थे विदेशी सामान का बहिष्कार और स्वदेशनिर्मित वस्तुओं को अपनाना। बायकाट और स्वदेशी के प्रयोग ने पूरे देशव्यापी आंदोलन का रूप ले लिया। समाज के सभी वर्ग, विद्यार्थी और महिलाएँ सभी ने इस आन्दोलन में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। यह जन–आन्दोलन बन गया। अंग्रेज सरकार ने हर प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही द्वारा इसको दबाने का प्रयत्न किया।

1919 ई. की अवधि

मॉन्टेंग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों ने भारत शासन अधिनियम 1919 के द्वारा राज्य में द्वैध शासन पद्धति लागू कर दी। नरम दल ने इन सुधारों का स्वागत किया परन्तु उग्रवादियों ने इन प्रस्तावों को ठुकरा दिया। राजनैतिक हिंसाओं को कुचलने के लिए

1919 ई. में रॉलेट एक्ट भी पास किया गया। इस मोड़ पर भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के राजनैतिक पटल पर एक नया चेहरा उभर कर आया। ये महात्मा गांधी थे जिन्होंने कांग्रेस के उच्चस्तरीय नेतृत्व में कमी को पूरा कर दिया। गांधी ने दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के विरूद्ध भेदभाव की नीति के खिलाफ आन्दोलन चलाया था। उन्होंने सत्याग्रह (सत्य का आग्रह) का राजनैतिक शस्त्र के रूप में प्रयोग किया था। उनकी पहली विजय भारत में चम्पारन सत्याग्रह के रूप में हुई।

यह स्वतन्त्रता आन्दोलन का तीसरा पक्ष था जो गांधी युग के नाम से कहा जा सकता है। रॉलेट एक्ट के विरोध में आन्दोलन छेड़ दिया गया लेकिन हिंसा के फूट पड़ने के कारण गांधी जी ने इसको वापिस ले लिया। वह हिंसा के सख्त विरोधी थे। 13 अप्रैल 1919 ई. को जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ जिसमें 1000 से भी अधिक लोग जनरल डायर के आदेश पर कत्ल कर दिए गए। नवम्बर 1919 में खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन का उद्देश्य सरकार पर दबाव डालना था कि वह टर्की के विषय में मुस्लिमों के साथ किये गये अन्याय को दूर करे। गांधी जी के नेतृत्व में यह खिलाफत आन्दोलन असहयोग आन्दोलन में बदल गया। उन्होंने 10 मार्च 1920 ई. को एक प्रचार पत्र जारी किया जिसमें अपने अहिंसक असहयोग आन्दोलन के दर्शन का प्रतिपादन किया। उन्होंने बायकट का अपना एक विस्तृत कार्यक्रम निर्धारित किया जिसके अन्तर्गत हर वह वस्तु जो ब्रिटिश है उसका बहिष्कार निहित था यहाँ तक कि नौकरियाँ, अदालतें, स्कूल, कॉलेज समारोह और वस्तुएँ भी। इसी के साथ एक रचनात्मक कार्यक्रम भी था जिसमें स्वदेशी को अपनाना, अस्पृश्यता को दूर करना, और हिन्दु मुस्लिम एकता पर बल देना सम्मिलित था। सी. आर. दास और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी के झण्डे के नीचे परिषद में रहते हुए व्यवस्था को तोडने की योजना बनाई। परन्तु यह पार्टी तीन साल में ही फेल हो गई। 1922 ई. में क्रांतिकारी गतिविधियाँ तेज हो गईं और 1934 ई. तक छुटपुट रूप से चलती रहीं। कुछ प्रमुख क्रांतिकारी थे भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरू, सुखदेव, बिस्मिल, अश्फाक उल्लाह और अन्य कई। कुछ क्रांतिकारी साम्यवादी भी थे जैसे– एम. एन. राय, डांगे, मुजफ्फर आदि। कुछ साम्यादियों को मेरठ षडयन्त्र केस में दीर्घावधि तक जेल की सजा हो गई। 1927 ई. में साइमन कमीशन बनाकर भारत की राजनैतिक परिस्थिति की जांच पड़ताल करने के लिए भेजा गया। जहाँ जहाँ भी यह कमीशन गया इसको अहिंसक परन्तु तीक्ष्ण विरोधी प्रदर्शनों का सामना करना पड़ा क्योंकि कमीशन में कोई भी भारतीय सम्मिलित नहीं किया गया था। लाहौर में एक शान्तिपूर्ण प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए लाला लाजपतराय को इतनी लाठियाँ खानी पड़ी कि उनकी मृत्यु हो गई। 1928 में नेहरू रिपोर्ट के नाम से भारत के लिए संविधान की रूपरेखा बनाई गई। 1929 के कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का नारा लक्ष्य रूप में स्वीकार किया गया। 26 जनवरी 1930 का दिन स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया। गांधीजी ने नमक सत्याग्रह प्रारम्भ किया जो दांडी मार्च के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह आन्दोलन 6 अप्रैल 1930 ई. को प्रारम्भ हुआ। नागरिक बहिष्कार आन्दोलन 1934 तब चलता रहा। इस बीच गोलमेज सम्मेलन भी हुआ परन्तु आन्दोलन को बन्द करना पड़ा। गांधी जी ने 1934 ई. में कांग्रेज से सेवानिवृत्ति ले ली। उन्होंने दलित वर्ग तथा अछूतों के उत्थान के लिए कार्य करना शुरू किया। वे अछूतों को हरिजन कहते थे। इसी समय हरिजन सेवक संघकी भी स्थापना हुई।

स्वतंत्रता की प्राप्ति

1935 ई. में भारत शासन अधिनियम स्वीकृत हुआ। इसमें अखिल भारतीय संघ की अवधारणा निहित थी। प्रांतीय स्वायत्तता का प्रारंभ किया गया। केवल 14% जनता ही वोट दे सकती थी। मुस्लिम, सिख, भारतीय ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन और यूरोपियन तथा अन्य के लिए अलग–अलग निर्वाचन निर्धारित किए गए थे। इस अधिनियम में भारतीय एकता के विकास को निरूत्साहित करके अलगाववाद और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया था। कांग्रेस ने अधिनियम को अस्वीकृत किया परंतु उसने चुनाव में भाग लेने का निश्चम किया।

1937 ई. में चुनाव हुए। 11 प्रदेशों में से 7 में कांग्रेस मंत्रीमंडल चुने गए। इससे जनता को कई प्रकार से लाभ हुआ। कांग्रेस के अंदर और बाहर समाजवादी विचार पनपने लगे। कांग्रेस के नेता जैसे नेहरू और बोस भी समाजवादी विचारों से प्रभावित हुए। अंग्रेजों की फुट डालो और राज करो नीति ने साम्प्रदायिकता को जन्म दिया। अंग्रेज शासक एक समुदाय को दूसरे से भिड़ाने लगे। वे वस्तुतः उठते हुए राष्ट्रवाद को कुचलने के लिए मुस्लिमों को प्रसन्न करके और उनको अल्पसंख्यकों के अधिकार स्वरूप और अधिकार मांगने के लिए उकसाने लगे। साम्प्रदायिक निर्वाचन भी इसी बांटने के लक्ष्य से विभाजित किए जा रहे थे जिससे राष्ट्रीय एकता न बन पाये। साम्प्रदायिकता के परिणामस्वरूप 1938 में दो राष्ट्र की अवधारणा बनी और 1940 में जिन्ना ने इसको अंतिम रूप प्रदान किया। गैर मुस्लिम साम्प्रदायिकता इतनी गंभीर परिस्थिति में नहीं पहुंची जितनी कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता। ये तो दूसरे वर्ग की प्रतिक्रिया स्वरूप ही थी। 1933 ई. में वाराणसी में एक हिंदू महासभा का अधिवेशन आयोजित किया गया। स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित आर्य समाज और समाज के अंतर्गत शुद्धि आंदोलन हिंदु समाज को पवित्र और शक्तिशाली बनाने में महत्वपूर्ण थे। डॉ. हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना की। इस संघ का उद्देश्य था हिन्दु जाति में जागृति पैदा करना और उन्हें सुसंगठित करना और उसके अंदर राष्ट्रीयता की सुदृढ़ भावना को कूट–कूट कर भरना। इस उद्देश्य से शाखा तकनीक का प्रयोग किया जाने लगा।

जब 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया, कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य मांगना प्रारंभ कर दिया। क्रिप्स मिशन ने 1942 ई. में युद्ध की समाप्ति के बाद भारत को एक डोमिनियन स्टेटस का अधिकार देना स्वीकार किया। कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अगस्त 1942 ई. में महात्मा गांधी ने और कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन प्रारंभ कर दिया। इसी अवधि में जयप्रकाश नारायण द्वारा संचालित आंदोलन भी सक्रिय हो उठा था। यद्यपि दोनों ही आंदोलन–हिंसक और अहिंसक–विफल रहे पर अंग्रेज समझ गये कि उन्हें अब भारत छोड़कर जाना ही पड़ेगा। सुभाषचंद्र बोस और रासबिहारी बोस ने भारतीय स्वतंत्रता लीग और आजाद हिन्द फौज का गठन किया। यह सब काम सिंगापुर में 1943 ई. में हुआ। जापानियों की सहायता से आजाद हिन्द फौज भारत की सीमा तक आ पहुँची और कोहिमा पर अधिकार कर लिया। पर तभी बाजी पलट गई।

जापान ब्रिटिश सेना से हार गया। आजाद हिन्द फौज की गति भी समाप्त हो गई और उधर सुभाष चन्द्र बोस एक हवाई जहाज की दुर्घटना में अगस्त 1945 ई. में मारे गये। युद्ध समाप्त होने के बाद 1946 ई. के प्रारंभ में चुनाव प्रारंभ हुए। कांग्रेस ने अधिकांश सीटें जीत लीं। मार्च 1946 ई. में कैबिनेट मिशन भारतीयों को राज्य हस्तांतरित करने के लिए भारत आया। इसने 16 मई 1946 ई. को अपनी संस्तुतियाँ प्रकाशित कीं। कैबिनेट मिशन योजना बहुत विस्तृत थी जिससे सम्पूर्ण शक्ति अंतिम रूप से भारत को सौंपी जा सके लेकिन कांग्रेस और मुस्लिम लीग में योजना को लेकर असहमति हो गई। इन्हीं घटनाओं के दौरान वायसराय ने नेहरू जी के प्रतिनिधित्व में कांग्रेस को अंतरिम सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। मुस्लिम लीग भड़क उठी और फिर साम्प्रदायिक दंगे प्रारंभ हो गये और चारों ओर बहुत खून खराबा हुआ। अंतरिम सरकार कुछ न कर सकी क्योंकि मुस्लिम लीग ने साथ नहीं दिया और मुसलमानों के लिए अलग देश पाकिस्तान की मांग पर अड़ गई। ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने फरवरी में यह घोषित कर दिया कि जून 1948 तक शक्ति का हस्तांतरण कर दिया जाएगा। मार्च में लार्ड माउन्टबैटन को भारत में भेजा गया कि वह इस स्थानांतरण के लिए तैयारियाँ करें। कांग्रेस को भारत का विभाजन कई दवाबों के कारण मानना पड़ा।

विशेषरूप से साम्प्रदायिक मार–काट और खून–खराबा और उधर लीग और जिन्ना का कड़ा रूख। भारत 15 अगस्त 1947 ई. को विभाजन के बाद स्वतंत्र हो गया। 14–15 अगस्त 1947 ई. की अर्धरात्रि को शक्ति का हस्तांरण घोषित हो गया।